© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2023

भारतीय संविधान का संवैधानिक विकास और इतिहास: एक विवेचना

Reetu

Assistant Professor, Political science

R.K.S.D.(P.G) College

सार

किसी भी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी सांचा-ढांचा निर्धारित करता है, जिसके अंतर्गत उसकी जनता शासित होती है। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगों की स्थापना करता है, उसकी शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधों का विनियमन करता है। इस प्रकार किसी देश के संविधान को उसकी ऐसी 'आधार' विधि (कानून) कहा जा सकता है, जो उसकी राजव्यवस्था के मूल सिद्धातों को निर्धारित करती है। वस्तुतः प्रत्येक संविधान उसके संस्थापकों एवं निर्माताओं के आदर्शों, सपनों तथा मूल्यों का दर्पण होता है। वह जनता की विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति, आस्था एवं आकांक्षाओं पर आधारित होता है। भारत में नये गणराज्य के संविधान का शुभारंभ 26 जनवरी, 1950 को हुआ और भारत अपने लंबे इतिहास में प्रथम बार एक आधुनिक संस्थागत ढांचे के साथ पूर्ण संसदीय लोकतंत्र बना। 26 नवम्बर, 1949 को भारतीय संविधान सभा द्वारा निर्मित 'भारत का संविधान' के पूर्व ब्रिटिश संसद द्वारा कई ऐसे अधिनियम/चार्टर पारित किये गये थे, जिन्हें भारतीय संविधान का आधार कहा जा सकता है। भारत संस्कृति, लोगों और इसके भूभाग (टेरेन) के मामले में एक विविध देश रहा है। इसलिए संविधान निर्माताओं के लिए एक सर्वोच्च नियम पुस्तिका बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था, जिसके अनुसार इस समृद्ध विविधतापूर्ण राष्ट्र पर प्रभावी ढंग से शासन किया जा सके। इस लेख में भारतीय संविधान को आकार देने वाले विभिन्न अधिनियमों, विनियमों और घोषणाओं का उल्लेख किया गया है।

मुख्य शब्द: विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, भारतीय संविधान, राजव्यवस्था, संसदीय लोकतंत्र आदि।

परिचय

भारतीय संविधान भारत के लोगो द्वारा बनाया गया तथा स्वंय को समर्पित किया गया। संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर, 1949 को अंगीकार किया गया था। यह 26 जनवरी, 1950 से पूर्णरूपेण लागू हो गया। संविधान में 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी। इस समय संविधान में बहुत संशोधन हो चुके है। संविधान में समय- समय पर संशोधन हुए, जिसमें कुछ अनुच्छेद संशोधनों के द्वारा निकाल दिए गए और कुछ के साथ क, ख, ग आदि करके नए अनुच्छेद जोड़ दिए गए, किंतु संदर्भ में सुविधा की दृष्टि से, संविधान के भागो और अनुच्छेदों की मूल संख्याओं में परिवर्तन नहीं किया गया। इस समय गणना की दृष्टि से कुछ अनुच्छेद (1-395 तक) वस्तुतया 445 हो गए है। अनुसूचियां 8 से बढ़कर 12 हो गयी है। तथा पिछले 62 सालो में 100 से ज्यादा संविधान संशोधन विधेयक पारित हो चुके है।

किसी देश के संविधान के भवन निर्माण सदैव उसके अतीत की नींव पर किया जाता है। भारतीय गणतंत्र का संविधान राजनैतिक क्रांति का परिणाम नहीं है। यह जनता के मान्य प्रतिनिधियों के निकाय के अनुसंधान और विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप जन्मा है इस निकाय ने प्रशासन की विद्यमान पद्धति में सुधार लाने का प्रयत्न किया। अतः किसी भी विद्यमान तथा लागू संविधान को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि तथा उसके इतिहास को जानना जरूरी होता है।

प्राचीन भारत में संवैधानिक शासन-प्रणाली

लोकतंत्र, प्रतिनिधि-संस्थान, शासकों की तानाशाही शक्तियों पर अंकुश और विधि के शासन की संकल्पनाए प्राचीन भारत के लिए अपरिचित नहीं थी। धर्म की सर्वोच्चता की संकल्पना विधि के शासन या नियंत्रित सरकार की संकल्पना से भिन्न नहीं थी। प्राचीन भारत में शासन धर्म से बंधे हुए थे, कोई भी व्यक्ति धर्म का उल्लंघन नहीं कर सकता था। प्राचीन भारत के अनेक भागों में गणतन्त्र शासन प्रणाली, प्रतिनिधि-विचारण-मण्डल और स्थानीय स्वशासी संस्थाए विद्यमान थी और वैदिक काल (3000-1000 ई०पृ०) से ही लोकतांत्रिक चिंतन तथा व्यवहार लोगो के जीवन में था।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में सभा (आमसभा) तथा समिति (वयोवृद्धों की सभा) का उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राहमण, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य का अर्थशाखत्र, महाभारत, अशोकस्तम्भों पर उत्कीर्ण शिलालेख,

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2023

उस काल के बौद्ध तथा जैन ग्रन्थ और मनुस्मृति- ये सभी इस बात के साक्ष्य है कि भारतीय इतिहास के वैदिकोत्तर काल में अनेक सक्रिय गणतंत्र विद्यमान थे।

ई०पृ० चौथी शताब्दी में 'क्षुद्रक मल्ल संघ" नामक गणतंत्र-परिसंघ ने सिकन्दर का मुकाबला किया था। पाटलीपूत्र (पटना) के निकट लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी। वह राज्य एक गणतंत्र था उसका शासन एक सभा चलाती थी। उसका एक निर्वाचित अध्यक्ष होता था। और उसे नायक कहा जाता था।

दशवी शताब्दी में शुक्राचार्य ने 'नीतिसार" की रचना की जो संविधान पर लिखी गई पुस्तक है। इसमें केन्द्रीय सरकार के संगठन एवं ग्रामीण तथा नगरीय जीवन, राजा की परिषद और सरकार के विभिन्न विभागो का वर्णन किया गया है। गणराज्य, निर्वाचित राजा, सभा और समिति जैसे लोकतांत्रिक संस्थान बाद में लुप्त हो गए। किंतु ग्राम स्तर पर ग्राम संघ, ग्राम सभा अथवा पंचायत जैसे प्रतिनिधि - निकाय जीवित रहे और अनेक हिन्दू तथा मुस्लिम राजवंशो के शासन के दौरान तथा अंग्रेजी शासन के आगमन तक कार्य करते रहे और फलते-फूलते रहे।

औपनिवेशिक काल में संवैधानिक विकास

31 दिसम्बर 1600 को लंदन के कुछ व्यापारियों द्वारा बनायी गयी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महारानी एलिजाबेथ से शाही चार्ट प्राप्त कर भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ क्षेत्रों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्राप्त कर लिया। औरंगजेब की मृत्यु (1707) और 1757 के प्लासी के युद्ध में कंपनी की विजय के साथ ही भारत में अंग्रेजी शासन की नींव पडी।

रेंग्युलेटिंग एक्ट, 1773-1773 का एक्ट भारत के संवैधानिक इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियन्त्रण के प्रयासों की शुरूआत थी। कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन अब कम्पनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट में भारत में कंपनी के शासन के लिए पहली बार एक लिखित संविधान प्रस्तुत किया गया।

चार्टर एक्ट, 1833- भारत में अंग्रेजीराज के दौरान संविधान निर्माण के संकेत 1833 के चार्टर एक्ट में मिलते है। इस एक्ट के अन्तर्गत सपरिषद, गवर्नर-जनरल के विधि-निर्माण अधिवेशनो तथा उसके कार्यपालक

अधिवेशनों में अंतर करते हुए भारत में अंग्रेजी शासनाधीन क्षेत्रों के शासन में संस्थागत विशेषीकरण का तत्व समाविष्ट किया गया।

चार्टर एक्ट, 1953-1853 का चार्टर एक्ट अन्तिम चार्टर एक्ट था। इस एक्ट के अन्तर्गत भारतीय गवर्नर जनरल की परिषद को ऐसी विधायी प्राधिकरण के रूप में जारी रखा गया। जो समूचे ब्रिटिश भारत के लिए विधियां बनाने में सक्षम थी। तथापि इसके स्वरूप तथा संघटन में अनेक परिवर्तन कर दिए गए जिससे कि 'पूरी प्रणाली ही परिवर्तित" हो गयी थी। विधायी कार्यो के लिए परिषद में छः विशेष सदस्य जोडकर इसका विस्तार कर दिया गया। इन सदस्यों को विधियां तथा विनियम बनाने के लिए बुलाई गई बैठको के अलावा परिषद में बैठने तथा मतदान करने का अधिकार नहीं था। इन सदस्यों को विधायी पार्षद कहा जाता था। परिषद में गवर्नर-जनरल, कमांडर-इन-चीफ, मद्रास, बंबई, कलकत्ता और आगरा के स्थानीय शासको के चार प्रतिनिधियों समेत अब बारह सदस्य हो गये थे। परिषद के विधायी कार्यो को इसके कार्यपालक अधिकारों से स्पष्ट रूप से अलग कर दिया गया था। और एक्ट की धारा 23 की अपेक्षाओं के अनुसार उनके इस विशेष स्वरूप पर बल दिया गया था कि सपरिषद गवर्नर जनरल में निहित विधिया और विनियम बनाने की शक्तियों का प्रयोग केवल उक्त परिषद की बैठको में किया जायेगा।

1858 का एक्ट

भारत में अंग्रेजी शासन के मजबूती के साथ स्थापित हो जाने के बाद 1857 कर विद्रोह अंग्रेजी शासन का तख्ता पलट देने का पहला संगठित प्रयास था। उसे अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीय गदर तथा भारतीयो ने स्वाधीनता के लिए प्रथम युद्ध का नाम दिया। इस विद्रोह ने, जिसे अन्ततः दबा दिया गया। भारत में ईस्ट इण्डिया कंपनी की व्यवस्था को एक घातक झटका पहुचाया। ब्रिटिश संसद ने कुछ ऐसे सिद्धान्तो पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श करने के बाद, एक नया एक्ट पास किया। यह एक्ट अंततः 1858 का 'भारत के उत्तम प्रशासन के लिए एक्ट' बना। इस एक्ट के अधीन, उस समय जो भी भारतीय क्षेत्र कंपनी के कब्जे में थे, वे सब फ्राउन में निहित हो गए। और उन पर (भारत के लिए) प्रिसिंपल सेक्रेटरी आफ स्टेट के माध्यम से कमी करते हुए क्राउन द्वारा तथा उसके नाम, सीधे शासन किया जाने लगा। किंतु 1858 का एक्ट अधिकाशतः ऐसे प्रशासन - तंत्र में सुधार तक ही सीमित था। जिसके द्वारा भारत के प्रशासन पर इंग्लैण्ड

में निरीक्षण और नियंत्रण किया जाना था। इसके द्वारा भारत के प्रशासन पर इंग्लैण्ड में निरीक्षण और नियन्त्रण किया जाना था। इसके द्वारा भारत की तत्कालीन शासन व्यवस्था में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं किया गया।

भारतीय परिषद एक्ट, 1861 का भारतीय परिषद एक्ट भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण एवं युगान्तकारी घटना है। यह दो मुख्य कारणो से महत्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसने गवर्नर- जनरल को अपनी विस्तारित परिषद में भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को नामजद करके उन्हे विधायी कार्य से संबद्ध करने का अधिकार दे दिया। दूसरा यह कि इसने गवर्नर-जनरल की परिषद की विधायी शक्तियों का विक्रेन्द्रीयकरण कर दिया तथा उन्हें बम्बई तथा मद्रास की सरकारों में निहित कर दिया।

गर्वनर-जनरल की कार्यपालिका परिषद का विस्तार कर दिया गया। उसमें एक पांचवा सदस्य सम्मिलित कर दिया गया। उसके लिये न्यायविद होना जरूरी था। विधायी कार्यों के लिये कम से कम छः तथा अधिक से अधिक बारह अतिरिक्त सदस्य सम्मिलित किए गए। उनमें से कम से कम आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना जरूरी था। यद्यपि एक्ट में स्पष्ट रूप से उपबंध नहीं किया गया था, तथापि विधान परिषद के गैर सरकारी सदस्यों में भारतीयों का भी शामिल किया जा सकता था। वास्तव में 1862 में गर्वनर जनरल, लार्ड कैनिन ने नवगठित विधान परिषद मे तीन भारतीयों - पटियाला के महाराजा, बनारस के राजा ओर सर दिनकर राव- को नियुक्त किया। भारत में अंग्रेजी राज की शुरूआत के बाद पहली बार भारतीयों को विधायी कार्य से जोड़ा गया।

1861 के एक्ट में अनेक त्रुटियां थी। असके अलावा यह भारतीय आकांक्षाओं को भी पूरा नहीं करता था। इसने गवर्नर जनरल को सर्पश शक्तिमान बना दिया था। गैर सरकारी सदस्य कोई भी प्रभावी भूमिका अदा नहीं कर सकते थे। न तो कोई प्रश्न पूछ जा सकता था। देश में राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति निरंतर खराब होती गई। अनाज की भारी किल्लत हो गई और 1877 मे जबरदस्त अकाल पड़ा। इससे व्यापक असंतोष फैल गया और स्थिति विस्फोटक बन गई। 1857 के विद्रोह के बाद जो दमन चक्र चला, उसके कारण अंग्रजों के खिलाफ लोगो की भावनाएं भड़क उठी थी। इनमें और भी तेजी आई जब यूरोपियों और

आंग्ल भारतीयों ने इल्बर्ट विधेयक का जमकर विरोध किया। इल्बर्ट विधेयक ये सिविल सेवाओं के यूरोपीय तथा भारतीय सदस्यों के बीच घिनौने भेद को समाप्त करने की व्यवस्था की गयी थी।

भारतीय परिषद अधिनियम 1892

भारतीय और प्रान्तीय विधान परिषदों के बारे में उल्लिखित स्थिति में दो सुधार भारतीय परिषद अधिनियम 1892 द्वारा किये गये। एक तो यह कि

(क) भारतीय विधान परिषद मे शासकीय सदस्यों का बहुमत रखा गया किन्तु गैर सरकारी सदस्य बंगाल चैम्बर आफ फामर्स और प्रांतीय विधान परिषद द्वारा नाम निर्देशित होने लगे। प्रांतीय परिषदों के गैर सरकारी सदस्य कुछ स्थानीय निकायों द्वारा नाम निर्दिष्ट किये जाने लगे। ये स्थानीय निकाय थे विश्व विद्यालय, जिला बोडर्, नगर पालिका आदि।

(ख) परिषदो को राजस्व और व्यय के वार्षिक कथन अर्थात बजट पर विचार विमर्श करने की और कार्यपालिका से प्रश्न पूछने की शक्ति दी गई। इस अधिनियम की विशेषता इसका उद्देश्य है जिसे भारत के लिए अंडर सेक्रेटरी आफ स्टेट ने इस प्रकार स्पष्ट किया था।

(यह) भारत के शासन का आधार विस्तृत करने और उसके कृत्यो को बढ़ाने के लिए, और गैर-सरकारी तथा भारत के समाज के स्थानीय तत्वो को शासन के काम में भाग लेने का अवसर देने के लिए अधिनियम है।

मोरले-मिंटो सुधार और भारतीय परिषद अधिनियम, 1909

मोरले-मिंटो के सुधार द्वारा प्रतिनिधिक और निर्वाचित तत्व का समावेश करने का पहला प्रयत्न किया गया। यह नामकरण तत्कालीन भारत के लिए सेक्रेटरी (लार्ड मोरले) और वाइसराय (लार्ड मिंटो) के नाम से हुआ। इस सुधार को भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 से लागू किया गया। प्रान्तीय विधान परिषद से सम्बन्धित परिवर्तन प्रगामी थे। इन परिषदों के आकार में वृद्धि की गई और उसमें कुछ निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्य सम्मिलित किए गए जिससे शासकीय बहुमत समाप्त हो गया। केन्द्र की विधान परिषद में भी निर्वाचन का समावेश हुआ किन्तु शासकीय बहुमत बना रहा।

विधान परिषदो के विचार-विमर्श के कृत्यो में भी इस अधिनियम द्वारा वृद्धि हुई। इससे उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे बजट या लोकहित के किसी विषय पर संकल्प प्रस्तावित करके प्रशासन की नीति पर प्रभाव डाल सके। कुछ विनिर्दिष्ट विषय इसके बाहर थे। जैसे सशस्त्र बल, विदेश कार्य और देशी रियायतें। 1909 के अधिनियम द्वारा जो निर्वाचन की पद्धति अपनाई गयी उसमें एक बहुत बड़ा दोष था। इसी से पृथकतावाद का बीजारोपण हुआ जिसकी परिणति इस देश के दुखद विभाजन में हुई। मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल का विचार और राजनैतिक दल के रूप में मुस्लिम लीग की स्थापना एक ही समय में हुई (1906)।

इसके पश्चात् भारत शासन अधिनियम, 1915 (5 और 6 जार्ज पंचम), अध्याय 61) पारित किया गया। इसका उद्देश्य पूर्ववर्ती भारत शासन अधिनियमों को समेकित करना था। जिससे कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से सम्बन्धित भारत शासन के सभी विद्यमान उपबन्ध एक ही अधिनियम में प्राप्त हो जाए।

मोटेंग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर आधारित भारत शासन अधिनियम, 1919 -

मोटेंग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर आधारित भारत शासन अधिनियम 1919 में इस बात को स्पष्ट कर देने का प्रयास किया गया था कि अंग्रेज शासक भारतीयों के जिम्मेदार सरकार के ध्येय की पूर्ति तक केवल धीरे-धीरे पहुँचने के आधार पर स्वशासी संस्थाओं के क्रमिक विकास को मानने के लिए तैयार है। संवैधानिक प्रगति के प्रत्येक चरण के समय, ढंग तथा गति का निर्धारण केवल ब्रिटिश संसद करेगी और यह भारत के किसी आत्मनिर्णय पर आधारित नहीं होगा।

1919 के एक्ट तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों द्वारा तत्कालीन भारतीय संवैधानिक प्रणाली में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए केन्द्रीय विधान परिषद का स्थान राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा विधान सभा (निम्नसभा) वाले द्विसदनीय विधानमण्डल ने ले लिया। हांलांकि सदस्यो को नामजिद करने की कुछ शक्ति बनाए रखी गयी। फिर भी प्रत्येक सदन में निर्वाचित सदस्यो का बहुमत होना अब जरूरी हो गया था।

सदस्यों का चुनाव एक्ट के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के अधीन सीमांकित निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाना था। मताधिकार का विस्तार कर दिया गया था। निर्वाचन के लिए विहित अर्हताओं में बहुत भिन्नता थी और वे सांप्रदायिक समूह, निवास, और सम्पत्ति पर आधारित थी।

द्वैध शासनः- 1919 के एक्ट द्वारा आठ प्रमुख प्रांतो में, जिन्हे 'गवर्नर के प्रांतः कहा जाता था। द्वैध शासन की एक नई पद्धति शुरू की गयी। प्रांतो में आंशिक रूप से जिम्मेदार सरकार की स्थापना से पहले प्रारम्भिक व्यवस्था के रूप में प्रांतीय सरकारो के कार्य-क्षेत्र का सीमांकन करना जरूरी था। तदनुसार एक्ट में उपबन्ध किया गया था कि प्रशासनिक विषयों का केन्द्रीय तथा प्रांतीय के रूप में वर्गीकरण करने, प्रांतीय विषयों के संबंध में प्राधिकार स्थानीय शासनों को सौपने, और राजस्व तथा अन्य धनराशियां उन सरकारो को आबंटित करने के लिए नियम बनाए जाए। विषयों का 'केन्द्रीय' तथा 'प्रान्तीय" के रूप में हस्तान्तरण नियमों द्वारा विस्तृत वर्गीकरण किया गया।

1919 एक्ट की खामिया

1919 एक्ट में अनेक खामिया थी। इसने जिम्मेदार सरकार की मांग को पूरा नहीं किया। इसके अलावा, प्रांतीय विधानमण्डल गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के बगैर अनेक विषय क्षेत्रो में विधेयकों पर बहस नहीं कर सकते थे। सिद्धान्त के रूप में, केन्द्रीय विधानमण्डल संपूर्ण क्षेत्र के लिए कानून बनाने के वास्ते सर्वोच्च तथा सक्षम बना रहा। केन्द्र तथा प्रांतो के बीच शक्तियों के बटवारे के बावजूद 'पहले के अत्यधिक केंद्रीय कृत शासन' में बदलने का सरकार का कोई इरादा मालूम नहीं पड़ा। ब्रिटिश भारत का संविधान एकात्मक राज्य का संविधान ही बना रहा। प्रांतो में द्वैध शासन पूरी तरह से विफल रहा। गवर्नर का पूर्ण वर्चस्व कायम रहा। वित्तीय शक्ति के अभाव में, मंत्री अपनी नीति को प्रभावी रूप से कार्यान्वित नहीं कर सकते थे। इसके अलावा, मंत्री विधानमण्डल के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार नहीं थे। वे केवल गवर्नर के व्यक्तिगत रूप से नियुक्त सलाहकार थे।

कांग्रेस तथा भारतीय जनमत असंतुष्ट रहा और उन्होने दबाव डाला कि प्रशासन को अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधिक और उत्तरदायी बनाने के लिए सुधार किए जाए प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था और आम लोगो के मन में अनेक आशाएं थी। किंतु उनके हाथ लगे दमनकारी विशेष विधायी प्रस्ताव जिन्हें

रौलट बिल कहा गया। भारतीय जनमत का व्यापक और जबरदस्त विरोध होने पर भी उन्हें पास कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, गॉधी जी के नेतृत्व में स्वराज के लिए सत्याग्रह, असहयोग और खिलाफत आन्दोलन शुरू किए गये।

साइमन आयोग

1919 के एक्ट के अधीन, एक्ट के कार्यकाल की जांच करने तथा उसके संबन्ध में रिपोर्ट देने और सुधार के लिए आगे और सिफारिशे करने के लिए, दस वर्ष बाद 1929 में एक आयोग नियुक्त करने का उपबंध था। व्याप्त असंतोष को देखते हुए भारतीय संवैधानिक आयोग (साइमन कमीशन) 1927 में अर्थात् निर्धारित समय से दो वर्ष पहले ही नियुक्त कर दिया गया लेकिन क्योंकि इसमें सारे के सारे सदस्य अंग्रेज थे, इसलिए इससे भारतीय जनता की भावनाओं को और भी ठेस पहुची।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अनुसार 14-15 अगस्त, 1947 को भारत तथा पाकिस्तान नामक दो स्वतंत्र राष्ट्रों का गठन कर दिया गया। इस प्रकार भारतीय संविधान की बहुत-सी संस्थाओं का विकास संवैधानिक विकास के लम्बे समय में हुआ, जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है संघीय व्यवस्था। यह कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा 1916 ई. के लखनऊ समझौते में स्वीकार की गयी थी। साइमन कमीशन ने भी संघीय व्यवस्था पर बल दिया और 1935 ई. के अधिनिमय ने संघीय व्यवस्था की स्थापना की, जिसमें प्रांतों के अधिकार ब्रिटेन के क्राउन द्वारा प्राप्त हुए थे। जब भारत स्वतंत्र हुआ तब तक राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता संघीय व्यवस्था के लिए वचनबद्ध हो चुके थे। संसदीय व्यवस्था, जो कार्यपालिका और विधायिका के संबंधों को परिभाषित करती है। इस तरह भारतीय संविधान, संविधान निर्माताओं की बुद्धिमानी और सूक्ष्म दृष्टि और कालक्रम में विकसित संस्थाओं और कार्यविधियों का एक अपूर्व सम्मिश्रण है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1] Kagzi, M.C. Jain- The Constitutional of India Vol I &2 New Delhi, India Law House, 2001.

[2] Keith, Arthur Berriedale- A Constitutional History of India 1600-1935, London, Methuan & Co.Ltd, 1937

[3] Austin, Granville – Working a Democratic Constitution: The Indian Experience, Delhi Oxford University Press 1999.

[4] Sharma, Brij Kishore – Introduction to the Constitution of India New Delhi, Prentice – Hall of India, 2005.

[5] Pandey J.N. – Constitutional Law of India, Allahabad, Central Law Agency, 2003.

[6] Pylee, M.V. Constitutional Amendments in India, Delhi, Universal Law, 2003.

[7] Jois, Justice M.Rama – Legal and Constitutional History of India, Delhi, Universal Law Publishing Co. 2005.

[8] Kautilya – The Constitutional History of India 2002, Bombay: C Jammadas & Co. Educational and Law Publishers.